# नागरिक और अनुशासन

**RAJIVE ANAND**
**II PDC**

आज का विद्यार्थी कल का नागरिक है। नागरिक कहने से मतलब है वह व्यक्ति जो सच्चा हो, जिसके मन में देश के प्रति प्रेम व आदर की भावना हो, और जो हमेशा अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए सजग हो। लेकिन आज की अनुशासन हीनता को देखने पर ऐसा लगता है कि दस-बीस सालों में हमारे देश की कौन सी दशा होगी ?, क्या एक भी व्यक्ति होगा जो सच्चा नागरिक कहलाने योग्य हो ?

आज की बदलती परिस्थितियों में अनुशासन की आवश्यकता पर विचार करना अत्यंत समीचीन ही होगा। परिवार, समाज, राजनीति, धर्म, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में अनुशासन हीनता का तांडव नृत्य हो रहा है। सार्वजनिक संस्थाओं का स्वरूप ही अत्यंत विकल एवं भयानक होता जा रहा है। राजनीति के क्षेत्र में शासकों के विरुद्ध शासित, परिवार में बड़ों के विरुद्ध छोटे उद्योगों के क्षेत्र में मालिकों के विरुद्ध मजदूर आतंक मचा रहे हैं। संक्षेप में कहें तो अनुशासन के अभाव मे हर कहीं अशांति उत्पन्न हो रही है।

आज हम देख सकते हैं कि एक भी दिन ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें कोई हड़ताल अनशन, लाठी–चर्ज आदि न हो। परिणाम यही होता है कि समाज-हितों के साथ व्यक्ति के हितों की भी हानि हो जाती है। समाज शरीर है तो व्यक्ति उसके अंग है। शरीर का प्रत्येक अंग, मस्तिष्क के अनुशासन के बिना अपने मनमाने ढंग से काम करने लगे तो शरीर की दुर्गति ही होगी। यही दशा अनुशासन हीनता के कारण व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व की हो जाएगी और वही होती जा रही है। कहने का यही मतलब है कि अनुशासित रहने पर ही व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व का कल्याण हो सकता है।

विद्यार्थियों में जो अनुशासन हीनता दिखायी पड़ती है, उसका मुख्य कारण राजनीति ही है। मेरा मतलब यह नहीं है कि विद्यार्थीयों को सामाजिक राजनीति से अनभिज्ञ रहना है। उन्हें राजनीति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र में राजनीतिज्ञों के समान भाग लेना विद्यार्थियों के लिए अच्छा नहीं है। हम ध्यान पूर्वक देखें तो विद्यार्थियों को राजनीति के व्यावहारिक क्षेत्र में खींच लाने का कार्य हमारे पूर्विकों द्वारा ही हुआ था। देश को स्वतंत्र बनाने के लिए, असहयोग आन्दोलन के रूप में, गान्धीजी ने ही विद्यार्थियों को विद्यालयों को छोड़कर कर्मक्षेत्र में आने का आह्वान किया था। देश की रक्षा की दृष्टि से उन दिनों में विद्यार्थियों का राजनीति में भाग लेना अनिवार्य था। लेकिन आज देश स्वतंत्र है। देश को प्रगति की ओर ले जाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। आज की परिस्थितियों मे विद्यार्थियों को राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भाग लेने की बिलकुल जरूरत नहीं है। लेकिन आज हमारे देश के राजनीतिज्ञों ने छोटे-बड़े सभी प्रकार के कार्यों को साधने के लिए विद्यार्थियों को एक साधन के रूप में स्वीकार किया है। आज विद्यार्थी इन राजनीतिक नेताओं के हाथ के कठपुतले मात्र हैं। अपने स्वार्थों की पूर्त्ती के लिए, हर आवश्यक-अनावश्यक कार्यों को साधने के लिए वे विद्यार्थियों का सहारा लेते हैं, उन्हें विद्यालयों को छोड़ने को विवश करते हैं,

हड़ताल-अनशन आदि के लिए प्रेरित करते हैं। मेरे ख्याल में आज विद्यालयों में जो अनुशासन हीनता दिखायी पड़ती है, उसका प्रमुख कारण हमारे राजनीतिज्ञों की नीति ही है। लेकिन कुछ लोग हमारी शिक्षा प्रणाली को दोष देते हुए बताते हैं, कि आज की इस अनुशासनहीन अवस्था का कारण हमारी शिक्षा प्रणाली ही है। एक हद तक इस कथन में भी सत्य का अंश है। आज जो विद्यार्थी विश्वविद्यालयों से उपाधि लेकर बाहर निकलते हैं, वे देश के बेकारों की संख्या बढ़ाने में ही सहायक बनते है। दस-पन्द्रह साल माँ-बापों का पैसा निगलकर, अपने जीवन का एक तिहाई भाग पाठशालाओं में बिताकर जो बाहर आते हैं, वे अपने आप कोई न कोई काम करके कुछ कमाने में असफल निकलते हैं। इसलिए उनमें वर्तमान व्यवस्थाओं के प्रति, रीति-रिवाज़ों के प्रति विद्रोह की भावना जन्म लेती है। विद्रोह की यह भावना राजनीतिज्ञों का सहारा पाकर धधक उठती है।

गान्धीजी ने भारत की गरीबी एवं बेकारी की समस्य को ध्यान में रखकर श्रम पर आधारित एक शिक्षा प्रणाली की रूप-रेखा बनायी थी, जो 'बेसिक शिक्षा प्रणाली' नाम से अभिहित है। लेकिन हमारे शिक्षा-शास्त्रियों ने उस ओर काफी ध्यान नहीं दिया, जिसका बुरा फल आज हम भोग रहे हैं।

निष्कर्ष रूप में मैं कहना चाहता हूँ कि अनुशासन से ही व्यक्ति, समाज एवं देश की प्रगति होगी, और प्रगति का यह सूत्र आज के विद्यार्थियों के ही हाथ में है।

# संसार के प्रति

**K. PRABHAKARAN**
**I B. Sc. Chemistry**

विश्व चेतना कितनी सुन्दर
प्रकृति नटी यह कितनी सुन्दर
प्रकृति चेतना की भृकुटी के
इशारे पर जग चलता था ।

पर अब संसार में
लोग धोखा देते हैं आपस में
मानवपन तो उठ गया जग से
स्वार्थमोह की मूर्ति बनामानव ।

बदनाम किया आर्य सभ्यता को
भ्रातृभाव, समता, प्रेम सब नष्ट हुए
पशुता पर ही तुम्हें गरूर
अन्ध है तुम्हारा मन हे ! मानव ।

पतन हुआ ठीक, उत्थान करो अब
नष्ट भ्रष्ट हो तुम्हारी पशुता,
सुख सुविधाओं पर अन्धे न बनो
अंकुरित हो नूतन भाव मन में ।

अलक्ष्य जीना, नहीं जीना
बुरे विचारों को दूर करें,
विश्व चेतना की मूर्ति हो मन में
अंकुरित करें प्रेम मानव मन में ।

# स्वावलम्बी बालक

**K. AAROPREM**

**I PDC**

पास के कारखाने से सैरन की आवाज गूँज उठी। शंकर रसोई की ओर चिल्लाने लगा—

"सुना माँ, नौ बज चुकी है और तुमने खाने का प्रबन्ध नहीं किया।" अन्दर से एक कोमल और थकी हुई आवाज आयी—"खाना तैयार है, चलो बेटे, खालो।" शंकर को भूख तो लगी ही थी और उसने तुरन्त चार सूखी रोटियाँ खा लीं।

खाने में स्वाद की कमी थी। गढ्ढा तो भर गया। बेचारा शंकर, वह क्या करता? खाने से असन्तुष्ट होकर उसने कहा— "क्यों माँ, घर में खाने के लिए इन सूखी रोटियों के सिवा और कुछ नहीं है? माँ उसे समझाने की कोशिश करती कि वे गरीबी में पड़े हैं, पर वह मासूम बच्चा क्या जाने?

ग्यारह साल का शंकर आठवीं कक्षा में पढ़ता है। कभी कभी उसके पिताजी लाल हो जाते और कहते– "अरे, खाना है तो खा, नहीं तो जा" पिताजी डाकघर में सियाहानवीस थे और एक महीने में तीन सौ रुपये कमाते थे; इससे दिन कैसे कटते?

शंकर सुबह नौ बजे खाकर स्कूल चला जाता और शाम को पाँच बजे लौटता। स्कूल में उसके सहपाठी सब अमीर घर के थे। उनकी ठाट-बाट को देखकर वह अपने भाग्य को कोसता। उनके हाथों में महंगी घड़ियाँ थीं, पैर में जूते थे जब कि उसके पास ये चीजें नहीं थीं। जब वह पिताजी से कुछ माँगने जाता तो वे उसे पीटते। इसलिए चुप रह जाता।

एक बार शंकर के पिताजी का तबादला हो गया। शंकर अब दसवीं कक्षा में था। यहाँ के स्कूल में आने पर उसे बहुत फरक दीखने लगा। कई विद्यार्थियों के पास किताब तक नहीं थी। लडके बहुत दुबले पतले और गरीब घर के थे। यह सब देख कर वह सोचने लगा :– "मुझ से कोई गलती हुई है।" उसे मामूल हुआ कि उसके माँ-बाप तो कई दिन खाना ही नहीं खाते थे, अपने बेटे पर जान थी उन्हें। शंकर ने जब इस स्थिति को देखा तब उसने सोचा कि मुझे जरूर रोटी कमाना है। उसके दिल में परिवर्तन लानेवाला एक और कारण था। स्कूल में संस्कृत कक्षा में उसे एक 'सुभाषित' पढाया गया था।

"छाया यच्छन्ति पन्थाय, स्वयं तिष्ठति आतपे।
फलानि च परार्थाय, वृक्षाः खलु सत्पुरुषः।।"

अर्थात् पेड यात्री को छाया देता है और खुद धूप में रहता है। फल भी दूसरो के भला केलिए है। पेड वास्तव में सत्पुरुष है।

सौभाग्यवश उसके एक मित्र ने उसे बताया कि वह खुद एक अखबार के एजेन्ट के पास नौकरी करता है और महीने में लगभग पचास रुपये कमाता है। यह जानकर शंकर की जान में जान आ गयी। वह उस अखबार के एजेन्ट के पास गया। उसकी हालत पहचान कर एजेन्ट ने उसे एक छोटी नौकरी दी। पहले उसका वेतन पचपन रूपये रखा गया और एजेन्ट ने उसे यकीन दिलाया कि उसका वेतन बढाया जाएगा।

शंकर उस शाम खुशी-खुशी घर गया। जाकर माँ से कहने लगा– "माँ, मुझे कल से छः बजे स्कूल जाना है। क्यों कि परीक्षा के लिए अब बहुत ज्यादा पढना है। माँ ने मुस्कुराकर पूछा–"झूठ तो नहीं कह रहे हो ?-" "माँ, मैं सच ही कह रहा हूँ"– उसने जवाब दिया।

अगले दिन सवेरे पाँच बजे से पहले शंकर घर से निकला। वह सीधे अखबार की दूकान पहूँचा और अखबार लेकर जल्दी-जल्दी बाँटने लगा। काम समाप्त कर वह समय पर स्कूल पहूँच गया। शाम को घर लौटकर रोज की भाँति वह समय का सदुपयोग करने लगा।

इस प्रकार शंकर ने छः महीने बिताये। उसका वेतन अब पैंसठ रुपये हैं। उसने अपना वेतन जमाकर रखा था। अपने माँ-बाप से इस के बारे में कुछ नहीं कहा।

* * *

दीवाली का दिन था। सभी ओर पटाकों की आवाज से कान के परदे फटे जा रहे थे। शंकर की माँ निराश होकर आँसू बहाती बैठी थी। शंकर के पिताजी बोले– "अरे, सुनती हो शंकर की माँ ! यह तुमने अपने आप को क्या बना रखा है। अपने बेटे की चिन्ता है न ? रोना बन्द करो। आज से मेरा वेतन चार सौ पचास रुपये हो गया है। अब हम अपने बेटे की अच्छी देख-भाल कर सकेंगे। देखो, मैं क्या क्या लाया हूँ–मिठाइयाँ, पूडो सब हैं। तुम्हारे लिए यह एक नयी साडी है, मुन्ने के लिए कमीज।" शंकर की माँ चकित हो गयी। शंकर भी चुपचाप सुनता जा रहा था। उसने निश्चय किया था कि वह अपने कमाये हुए रुपये से माँ के लिए एक साडी खरीदेगा। लेकिन अब उसने दूसरा उपाय किया। उसने अपने मित्र द्वारा घर के लिए एक नया इलेक्ट्रिक गोस मंगवाया। अब सौ रुपये तो बच गये।

दोपहर को लगभग तीन बजे जब घर में सब आराम कर रहे थे तब किसी ने दरवाजा खटखटाया। शंकर के पिताजी ने दरवाजा खोला–"यह क्या है भाई, यह गोस हम ने तो नहीं माँग था। कहीं आसपास के घर के लिए होगा। तब वह आदमी जो उसे लाया था कहने लगा– "साहब इसे शंकर बाबू ने भिजवाया है।" इसी समय शंकर सामने आया और उसने पिताजी को सारी कहानी सुनायी। पिताजी बहुत खुश होकर बोले "जिन्दगी में यह याद रखो, मेरे बेटे, परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता।" शंकर ने जवाब दिया– "हाँ, पिताजी, मैं यह कभी नहीं भूलूंगा, करने की सौ राहें।" इतने में शंकर की माँ अतीव आनन्द के साथ बोल उठी–"हाँ मैं जानती हूँ, जैसा बाप वैसा बेटा।" □○